भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दीके उपलक्ष्यमें

स्वामिनारायण परिचय पुस्तकमाला-पुष्प : ६

अक्षर मूर्ति

# गुणातीतानंद स्वामी

साधु ईश्वरचरणदास

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था

भगवान स्वामिनारायण

भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी के उपलक्ष्य में

स्वामिनारायण परिचय पुस्तकमाला पुष्प : ६

# अक्षरमूर्ति
# गुणातीतानंद स्वामी

लेखक
शास्त्री ईश्वचरणदास

: प्रकाशक :
बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था
शाहीबाग रोड, अहमदाबाद–३८०००४

प्रकाशक :

प्रकट ब्रह्मस्वरूप

स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी - प्रमुख स्वामी
अध्यक्ष,
भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी
प्रकाशन समिति

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था
शाहीबाग रोड, अहमदाबाद-३८०००४

*



*

द्वितीय आवृत्ति : २००१
जनवरी, १९८१

*

मूल्य : ००-७५

*

प्राप्तिस्थान :

श्री अक्षरपुरुषोत्तम स्वामिनारायण मंदिर,

* शाहीबाग रोड, अहमदाबाद ३८० ००४
* स्वामी ज्ञानजीवनदास मार्ग
स्वामिनारायण चौक, दादर (C.R.) बम्बई ४०० ०१४
* नाणावट, सुरत (गुजरात)
* अटलादरा, वड़ौदा (गुजरात)
* भाईकाका मार्ग, विद्यानगर (गुजरात)
* रजपूतपरा, शेरी नं. ४, राजकोट (गुजरात)
* लाती बजार, भावनगर (गुजरात)
* ६१, चक्रबेरिया रोड (नोर्थ), कलकत्ता २०

तथा गोंडल, भादरा, गढडा, सारंगपुर, बोचासण, सांकरी आदि संस्थाके मंदिरोंमें.

मुद्रक : साधना प्रिन्टरी, घीकांटा रोड
नोवल्टी सिनेमाके सामने, अहमदाबाद--३८०००१

भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी के अवसर पर उनके दिव्य जीवन और कार्य से विशाल जनसमुदाय अवगत हो इस उद्देश्यसे संस्था की प्रकाशन समितिने प्रकाशनों की एक विस्तृत योजना बनाई, जिसके अन्तर्गत उनके जीवन और कवन – वचनामृतों को प्रमुख भाषाओं में समाविष्ट करने का निर्णय किया गया । साथ ही साथ उनके भक्तों के प्रेरणादायक जीवन को भी कैसे भुलाया जा सकता है ? उनके सन्त–कवियों ने मध्ययुगीन गुजराती साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान किया है । गुजराती–हिन्दी साहित्य के लब्धप्रतिष्ठ कवियों और लेखकों द्वारा उनकी कृतियों का, मूल्यांकन करनेवाली प्रकाशन श्रेणी प्रकट करने का निर्णय प्रकाशन समिति ने किया । इन प्रकाशनें से आज के साहित्यप्रेमी, अभ्यासी और जिज्ञासु जनसमाज को भी इनका लाभ प्राप्त होगा । मूल गुजराती–पुस्तिका का यह हिन्दी अनुवाद है ।

इन प्रकाशनें में जिन लेखकें ने सहयोग प्रदान किया है, उसके लिये भगवान स्वामिनारायण, अनादि अक्षरमूर्ति श्री गुणातीतानंद स्वामी, स्वामीश्री यज्ञपुरुषदासजी ( शास्त्रीजी महाराज ) स्वामीश्री ज्ञानजीवनदासजी ( योगीजी महाराज ) उन्हें कृपान्वित करें यही है हमारी शुभकामनाएं ।

इस पुस्तक के लेखक शास्त्री भक्तिप्रियदास के प्रति भी प्रकाशन समिति की ओरसे हम कृतज्ञता ज्ञापन करते हैं ।

अक्षर मन्दिर,<br>गोंडल ( सौराष्ट्र )<br>लाभपांचम<br>सं. २०३५

–शास्त्री नारायणस्वरूपदास<br>( प्रमुख स्वामी ) का<br>जय श्री स्वामिनारायण<br>( अध्यक्ष : भगवान स्वामिनारायण<br>द्विशताब्दी महोत्सव समिति )

## प्रकाशकीय निवेदन

स्वामिनारायण धर्मका तत्त्वज्ञान, साहित्य, संस्कृति, कला, इतिहास आदि विविध विषयों पर अलग अलग छोटी पुस्तिकाओंका प्रकाशनकार्य बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था द्वारा भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दीके उपक्रममें शुरू हुआ है।

व्यस्त और यांत्रिक युगका आधुनिक मानव कम से कम शब्दों में और कम से कम समय में ज्यादा से ज्यादा जानकारी प्राप्त करना चाहता है। इस विचारको दृष्टि समक्ष रखकर सरल, सुबोध, रोचक शैलीमें इस पुस्तिकामालाका प्रारंभ करते हुए हम यह आशा रखते हैं कि प्रत्येक जिज्ञासु को इन पुस्तिकाओंके द्वारा स्वामिनारायण धर्मसे परिचित करानेका हमारे इस प्रयासका समाजमें आदर होगा। मूल गुजराती-पुस्तिकाका यह हिन्दी अनुवाद है।

सीमित पृष्ठों में इस गहन विषयका सांगोपांग विवेचन संभव नहीं है। वाचकवर्ग इस प्रयत्नको परिचयात्मक ही समजे और विषयकी गहराईको यदि जाननेकी भूख पैदा हो तो तत्संबंधी विशाल साहित्य देखें।

इस पुस्तिकाके लेखक शास्त्री ईश्वरचरणदासजी और दूसरे भी साथी सहयोगियोंकी ओर अपनी कृतज्ञता प्रकट करते हुए, और धार्मिक साहित्यप्रेमी विशाल वाचकवर्ग हमारे इस प्रयत्नको उचित सराहना करके हमें प्रोत्साहित करेंगे ऐसी आशा सह...

–प्रकाशन समिति

# अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी

'माँ, मुझे दूध दे।'

'बेटा, ठाकुरजी को नैवेद्य लगाकर देती हूँ।'

'लेकिन माँ, ठाकुरजी तो मेरे साथ ही दूध पीते हैं ! ठाकुरजी मेरे पास ही हैं,' बालक ने नम्रता से परन्तु दृढ़तापूर्वक कहा।

यह सुन कर माता आश्चर्य में डूब गई – 'यह बालक क्या बोलता है? घड़ी भर तो उसकी समझ में कुछ नहीं आया। फिर उसे याद आया कि ऐसी तो कितनी ही बातें उसका लाड्ला बेटा बोलता आया है। भगवान को इस तरह बार बार याद करता है, मानो भगवान को साथ लेकर ही जनमा हो!'

विचार-मन्थन में उलझी हुई माँ ने बालक को दूध दिया। उसी समय माँ की नजर घर के ताक में प्रतिष्ठित लालजी की मूर्ति की ओर गई। देखा तो उसे मूर्ति के मुँह पर दूध की महीन लकीर दिखाई पडी। उसे विश्वास हुआ कि दूध तो भगवान ने ही पिया है।

बालक के ऐसे एक नहीं बल्कि अनेक चमत्कारिक अनुभवों से माता साकरबाई और पिता भोलानाथ अचरज में डूब जाते। इस प्रकार विक्रम संवत् १८४१ की शरद पूनम के दिन ब्राह्मण दंपती के घर जन्मे हुए बालभक्त मूलजी, पूर्णिमा के चन्द्र के समान अधिक और अधिक प्रकाश और प्रभुत्व फैलाने लगे।

छोटे भाई सुन्दरजी को भी खेलाते खेलाते मूलजी उसके

कान में भगवान को भजने का उपदेश-मंत्र दे देते थे। यह देख कर माता अधिक आघात अनुभव करती थी। इसके सिवाय, मूलजी कभी कभी प्रकट रूप से बोल जाते कि आज तो पृथ्वी पर भगवान का यज्ञोपवीत संस्कार हो रहा है, आज तो भगवान गृहत्याग करके अनेक जीवों के कल्याण के लिए तीर्थाटन में निकले हैं। इस प्रकार की गूढ रहस्यमय वाणी सुनकर घर के सब लोगों की परेशानी और बढ़ जाती। मूलजी यह सब क्या बोलता है? क्यों बोलता है? कहीं मूलजी को किसी की नजर तो नहीं लग गई है? या इसके भीतर रह कर कोई दूसरी शक्ति बोल रही है? – विविध तर्क वितर्क चलते।

छोटी उमर होते हुए भी मूलजी बड़े धीर-गंभीर रहते थे। छोटे बच्चे की तरह उन्हें खाने-पीने और घूमने-फिरने का सांसारिक आनंद स्पर्श नहीं करता था। माता-पिता जब उन्हें खेलने-खाने की बात समझाते तब मूलजी दृढ़ता से कहते थे: "बचपन से ही प्रभु को भज लेना चाहिये। बड़े-बूढे सब गाँव के चौपाल पर गप्पें हाँकते हैं। कोई भगवान को याद नहीं करते।"

## 'ब्रह्मविद्या पढ कर आया हूँ'

यज्ञोपवीत विधि के अवसर पर भी ऐसा ही हुआ। गुरु ने जब विद्याभ्यास की सीख दी तब मूलजीने नम्र भाव से परन्तु स्पष्ट शब्दों में कहा: "मैं तो ब्रह्मविद्या पढ़कर ही आया हूँ।" सचमुच बुद्धि भी उनकी ऐसी थी कि छोटी उमर होने हुए भी धर्म के सूक्ष्म सिद्धान्त उनकी वाणी से सहज रूप में निकल पडते थे।

सौराष्ट्र में जामनगर के समीप भादरा ग्राम में प्रकट हुआ पूर्णिमा का यह चन्द्र भगवद्-भक्ति में भी पूर्ण कलाओं-

से खिला हुआ था। ऐसा ही उनका एक मित्र लालजी * साढ़े तीन कोस पर शेखपाट गाँव में रहता था। दोनों मित्रों को प्रभुभक्ति की इतनी लौ लगी थी कि वे हर रात दोनों गाँव के रास्ते के बीचोंबीच महादेव के मन्दिर में मिलते थे और भक्ति की बातें करते थे। दोनों भगवत्-सुख का आनन्द लूटते थे और प्रातःकाल अपने अपने गाँव लौट जाते थे। प्रतिदिन साढ़े तीन कोस जाना और आना! कैसी और कितनी श्रद्धा!

## पुरानी पहचान

ऐसे समय में नीलकंठ वर्णी स्वरूप में भगवान स्वामिनारायण तीर्थाटन करते हुए उत्तर दिशा से पूर्व की ओर होकर गुजरात में पधारे। यहाँ रामानन्द स्वामी नाम के संत सत्संग के प्रचार और प्रसार का सुन्दर कार्य कर रहे थे। दोनों का मिलाप हुआ। उन्होंने नीलकंठ को अपना उत्तराधिकारी घोषित किया और उन्हें भागवती दीक्षा देकर उनका नाम 'सहजानन्द' रखा। उस समय रामानन्द स्वामी के शिष्यों में से मूलजी तथा लालजी भी उपस्थित थे।

भक्त मूलजी बचपन से ही जिनके आगमन की भविष्य-वाणी करते थे उन प्रभु की आज साक्षात् प्राप्ति हुई थी। उनके आनन्द की कोई सीमा न रही। प्रभु ने भी अपनी प्रतीक्षा करनेवाले भक्त को दो बाहों के बीच हृदय-कमल में समा लिया। उस समय वहाँ खडे सब लोगों को इतना तो ख्याल आया कि इस भक्त और भगवान का कोई पुराना सम्बन्ध है।

"इनका और हमारा पुराना परिचय है। ये साकार रूप

---

* बाद में निष्कुलानन्द स्वामी के रूप में प्रसिद्ध।

में हमारे निवास के दिव्य धाम हैं — " प्रभु ने सबका भ्रम दूर करने के लिए हर्ष से अपने भक्त का परिचय दिया ।

अवतारी पुरुष जब पृथ्वी पर अवतार लेते हैं तब अपना साज-सामान साथ लाना भूलते नहीं । श्रीजी महाराज ने स्वयं कहा है कि "भगवान अपने अक्षरधाम (दिव्य धाम) अपने सेवकों और मुक्तों के साथ ही पृथ्वी पर पधारते हैं।" (वचनामृत ग. प्र. ७१) । समय आने पर भगवान सबका परिचय प्रकट करते हैं और उन्हें कार्य के लिए प्रेरित करते हैं ।

## गृहत्याग और दीक्षा

और हुआ भी ऐसा ही । भादरा गाँव के सिवान पर ऊँड नदी के किनारे प्रभु का अखंड स्मरण करते हुए मूलजी भक्त खेत में पानी दे रहे थे । एकाएक महाराजने उन्हें दर्शन दिये । महाराज की प्रत्यक्ष मूर्ति के साथ भक्त का चित्तवृत्ति का तार जुडा कि तुरन्त उसे प्रभु की आज्ञा का सूर सुनाई दिया : "मूलजी, बैठे क्यों हो ? ब्रह्म तेज जगत में घट रहा है । चलो, चलो, हमारे काम में देर हो रही है।" स्तब्ध बने हुए मूलजी भक्त की कार्य दिशा बदली । जिस उद्देश्य के लिए भक्त और भगवान का इस पृथ्वी पर अवतरण हुआ था, उसका आदेश मिलते ही भक्त भगवान के पास गढ़पुर जा पहुँचे ।

संवत् १८६६ के पोष मास में श्रीजी महाराज ने खेडा के पास डभाण गाँव में एक बडा अहिंसक यज्ञ किया । उसमें लखों ब्राह्मणों को उन्होंने तृप्त किया । पूर्णिमा के दिन पूर्णाहुति के महत्त्वपूर्ण अवसर पर अपने प्रिय भक्तराज मूलजी शर्मा को भागवती दीक्षा दी और परमहंसों की मंडली में अन्य किसी को न दिया हो ऐसा विशिष्ट परन्तु सार्थक नाम 'गुणातीतानंद' उन्होंने मूलजी को दिया । इस प्रकार अपने निकटत्तम भक्त का स्थायी परिचय भगवानने जगत को दे दिया ।

## सद्गुरु कौन ?

महाराज की आज्ञा से सद्धर्म के प्रचार के लिए संत गाँव-गाँव घूमते थे। गुणातीतानन्द स्वामी भी अपनी संत-सुवास फैलाते हुए सत्संग के लिए घूमते थे। उत्सव के मौके पर संतों को महाराज का सान्निध्य प्राप्त होता था। एक बार सारंगपुर गाम में फूलडोल ( होली ) के उत्सव में अपने संतों को विशेष सुख देने के लिए श्रीजी रास-मंडल में खेल रहे थे। संतगण कबीर रचित होरी का पद गाते-गवाते थे :

"कोटि कृष्ण जोड़े हाथ, कोटि विष्णु नमे माथ,
कोटि शंकर धरे ध्यान, कोटि ब्रह्मा कथे ज्ञान
सद्गुरु खेले वसंत।"

एकाएक रास को रोक कर रास-मंडल में खेल रहे आनंद स्वामी, मुक्तानंद स्वामी आदि बुजुर्ग संतों को समीप बुला कर महाराज ने पूछा : "इस पद में जिस सद्गुरु की महिमा गाई गई है, वह सद्गुरु कौन है ?" महाराज को ही सब कुछ समझने वाले संतों ने उत्तर दिया : "वे सद्गुरु तो आप ही हैं।" सबको बीच में ही रोक कर पास खड़े गुणातीतानन्द की ओर अपने हाथ की छड़ी से निर्देश करके महाराज ने समझाया : "ऐसे सद्गुरु तो ये गुणातीतानन्द हैं और हम तो इनके भी गुरु हैं। कबीर तो अक्षर को सद्गुरु साहिब कह कर भजते थे। वे ही ये अक्षर साकार-मूर्तिमान रूप में हमारे साथ सेवा में आये हैं। हम तो इनके भी स्वामी पुरुषोत्तम नारायण हैं।"

उस समय पहली ही बार महाराज ने सार्वजनिक रूप में बड़े बड़े संतों को अपने उत्तम भक्त का परिचय कराया।

## दर्शन में श्रद्धा

महाराज गुणातीतानन्द स्वामी की जैसी महिमा बताते थे

वैसी ही उनकी स्थिति का परिचय प्रसंग वश सबको मिले विना नहीं रहता था। चौमासे की ऋतु में ऐक मेघाच्छन्न रात में महाराज गढ़पुर के दरवार में भगवत्‌चर्चा करने गये थे। आधी रात वीते मुक्तानन्द स्वामी अचानक उठ कर अपने कमरे से बाहर आये। देखा तो गुणातीतानन्द स्वामी रिमझिम वरसात को सिर पर झेलते हुए स्थिर खड़े थे। मुक्तानंद स्वामी ने कारण पूछा। स्वामी ने कहा: "महाराज दरवार में पधारे हैं। वे लौटें तव उनके दर्शन हो जायें इसलिए यहाँ खड़ा हूँ।" उनकी यह श्रद्धा देख कर मुक्तानन्द स्वामी के अंतर में प्रतिध्वनि उठी: 'भक्ति तो गुणातीतानंद की ही!'

## वृत्ति का निरोध

सेवा–भावना की अभिरुचि रखने वाले गुणातीतानन्द स्वामी आरम्भ में मुक्तानन्द स्वामी के मंडल में रहते थे। एक वार वे मंड़ल के साथ सूरत पधारे। अंतर–मुखी तथा साधु के गुणों से सम्पन्न मुक्तानन्द स्वामी ने सभा के अवसर पर सव संतों से पूछा: "हमारे पड़ाव के सामने एक काला वंदर वँधा है। वह वड़ा चंचल है। हमारी दृष्टि हमें कैसे धोखा देती है? कि भगवान की मूर्ति को छोड़ कर एकाध वार मेरी वृत्ति भी उस वंदर की ओर गई है। इस सभा में कोई ऐसा है जिसने उस बंदर को देखा ही न हो?"

सभा में मौन छा गया। इतने में पीछे वैठे हुए एक संत खड़े हुए। सवकी नजर उस ओर दौड़ी। देखा तो गुणातीतानन्द थे। फिर एक वार मुक्तानन्द स्वामी के मुँह से उद्‌गार निकले: "सच्चे गुणातीत! वृत्ति का ऐसा निरोध भगवान की कृपा के विना महान योगियों को भी दुर्लभ होता है।" ऐसे मौके पर स्वामी की धीर–गंभीर होते हुए भी साधु प्रतिमा को देख कर छोटे–वड़े सबके सामने यह स्वीकार किया जाता

कि भले ही हम पाँच सौ संत महाराज के शिष्य हैं, परन्तु गुणातीत तो गुणातीत ही हैं। गुणातीत तो एक ही हैं।

यहाँ स्वामी को रोज भिक्षा माँगने निकलना पड़ता था। रोज उनके साथ जो संत रहते थे उसे दृष्टि दोष से स्त्री आदि का रूप दिखाई दें तो प्रायश्चित का उपवास करना पड़ता था। इसके कारण वे बदलते रहते थे। स्वामी गुणातीतानन्द की वृत्ति तो महाराज में ही निरन्त बनी रहती थी, इसलिए उनके विषय में नियम-भंग का या उपवास का प्रश्न ही नहीं रहता था। भिक्षा माँगने के लिए निकले हुए स्वामी के साथ महाराज दिव्य स्वरूप में हमेशा बने रहते थे। यह दर्शन स्वामी के साथ घूमने वाले आनन्द स्वामी ने प्रत्यक्ष किया था। स्वामी ने महाराज से कहा भी था कि "आप इस प्रकार मेरे पीछे चलते हैं, यह ठीक नहीं है। कभी गिर जायेंगे।"

"तुम्हारे जैसे सन्त की ओर पीठ कैसे की जाये ?" महाराज इतना ही बोले।

यह संवाद आनन्द स्वामी ने अपने कानों से सुना। उस समय उन्हें यह प्रतीति हुई कि योग का चरम लक्ष्य 'चित्त-वृत्ति का निरोध' स्वामी गुणातीतानंद के लिए स्वाभाविक है।

दासत्व-भक्ति की मूर्ति के समान स्वामीने एक समय नम्रतापूर्वक महाराज से पूछा : "ध्यान करना, आत्मारूप रहना, सेवा करना और बातें करना – इनमें श्रेष्ठ साधन कौनसा है ?"

महाराज ने अपना अभिप्राय बताया : "बातें करना श्रेष्ठ है, इससे श्रोता और वक्ता दोनों का श्रेय होता है।" तब से स्वामी ने बातों का अखंड प्रवाह बहाया। साथ में उनका सेवा-भक्ति का कार्य तो चलता ही रहता था। इससे बड़े बड़े सद्गुरु गुणातीतानंद स्वामी को अपने मंडलों में ले जाना चाहते थे। कारण, स्वामी सेवा भी करते थे और बातें भी करते थे।

### अजातशत्रु

सहजानन्दी संत की असीम साधुता के अनेक प्रकार के अनुभवों में शेत्रुंजी नदी के तट पर स्थित जूना सावर गाँव का प्रसंग अविस्मरणीय है। एक बार कृपानन्द स्वामी के साथ घूमते घूमते गुणातीतानन्द स्वामी इस गाँव में आ पहुँचे। ढूंढियों के भड़काने से गाँव के मुखिया उगा खुमाण के मन में स्वामीपंथी संतों के प्रति रोष पैदा हुआ। अनाथ गुजरात की उस भूमि पर संतों का सहायक श्रीजी के सिवाय दूसरा कोई नहीं था। बापू के हुक्म से गाँव की दुष्ट प्रजा ने इन संतों को मार-मार कर गाँव से बाहर निकाल दिया। साधुता के नियमों का निष्ठा से पालन करनेवाले संतों ने चुपचाप इस भयंकर मार को सहन किया। विरोध में एक अक्षर भी मुँह से नहीं निकाला। गाँव की दैवी जनता के लिए संतों की यह दयनीय स्थिति असह्य हो गई। पर वह क्या करे? बापूशाही में किस की चलती?

दोनों संत जब गाँव के बाहर विश्राम लेते हुए बेहाल पड़े थे, तब उन्हें पता चला कि बापू पुत्रप्राप्ति की लालसा से पीड़ित हैं। मंडली के विशेष प्रभावशाली संत गुणातीतानन्द स्वामी को श्रीजी के वचन याद आये कि 'दुष्ट लोगों की गालियाँ, अपमान और मार-पीट तो बरदाश्त करना ही चाहिए, उन्हें क्षमा भी करना चाहिए; परन्तु इससे आगे बढ़ कर उनका हित-चिंतन भी करना चाहिए।' स्वामी ने संकल्प किया कि बापू के घर संतान आये और वे सत्संगी बनें। संत के संकल्प को भगवान भी टाल नहीं सकते। बापू के घर कुल-दीपक का जन्म हुआ और सत्संगी बन कर उन्होंने इन्हीं संतों की सेवा की।

### 'हमारा तिलक'

इस प्रकार श्रीजी के संत चारों ओर सत्संग का प्रचार

कर रहे थे । परन्तु जब महाराज की आज्ञा होती तब सब कोई बाढ़ से पागल बनी नदी की तरह उनके दर्शनों के लिए दौड़ पड़ते । महाराज प्रेम की वर्षा करके सब को हल्के फूल की तरह बना देते । इस में भी गुणातीतानन्द को देख कर वे अधिक प्रसन्न हो जाते ।

एक बार पंचाला में सब संतगण एकत्रित हुए । महाराज ने संकल्प किया कि सब संतों के ललाट पर स्वामिनारायणी तिलक-चिह्न तो सुशोभित होना ही चाहिए । तभी सब लोग मेरे संतों को पहचानेंगे । वर्ना इसके पहले संतों को नमूने का तिलक लोगों को दिखाना होगा । इस कारण जैसे कोई चक्रवर्ती राजा अपने युवराज के ललाट पर तिलक करे उसी प्रकार महाराज ने गोपीचन्दन का ऊर्ध्वपुंड्र तिलक गुणातीतानन्द स्वामी के उन्नत भाल पर किया । और सबको सम्बोधित करके कहा : "यह हमारा तिलक है-सब से अनोखा और न्यारा । इस तिलक को धारण करने वाले यह संत भी सब से न्यारे और हम भी सब से न्यारे ।"

## वेदान्तियों की पराजय

एक समैया ( समारोह ) में सब संत वरताल में ऐकत्र हुए थे । नये सम्प्रदाय में सम्मिलित होनेवाले भक्तों को अन्य पंथ के अनुयायीयों द्वारा बड़ा कष्ट और मुसीबत सहन करनी पड़ती थी । यहाँ महेमदाबाद के भक्त मंडल ने महाराज के सामने ऐसी ही शिकायत रखी कि "हमारे यहाँ वेदान्ती ब्राह्मण हमें परेशान करते हैं, तर्क में हमें हरा देते हैं । इसलिए आप अच्छे विद्वान संतों को हमारे यहाँ भेजें, तो उनका उपद्रव शांत हो जाये ।"

वेदशास्त्र के अभ्यासी विद्वान संतों को छोड़ कर महाराज की दृष्टि स्वामी गुणातीतानंद पर पड़ी । महाराज की अनुवृत्ति

के पालक स्वामी तैयार होकर हरिभक्तों के साथ महेमदावाद गये । स्वामिनारायण के महंत को पराजित करने के आशय से सब ब्राह्मण इकट्ठे हुए । सभा हुई । अष्टांग ब्रह्मचर्य के साथ भगवान में अखंड वृत्ति रखने वाले स्वामी से प्रभावित हो कर झूठा अभिमान करनेवाले ब्राह्मण दब गये । स्वामी ने ब्राह्मी-स्थिति का शाब्दिक परिचय दिया और उनसे कहा : "यदि आप लोग शुकदेवजी के समान ब्रह्मरूप हो गये हों, तो इस खंभे में प्रवेश करके मुझे उत्तर दें ।"

"अभी 'मैं' और 'मेरा' आपका दूर नहीं हुआ है । पंचविषयों में आपकी आसक्ति मिट जायेगी उस के बाद आपको ब्रह्मत्व का परिचय कराना नहीं पड़ेगा । जब तक 'अहं ब्रह्मास्मि' बोला जाता है तब तक अपूर्णता है, अहंकार है । आज स्वामिनारायण परब्रह्म परमात्मा स्वयं पृथ्वी पर प्रकट हुए है और उनके प्रताप से उनके शिष्य ब्रह्मस्वरूप हो गये हैं ।"

स्वामी बोलते जा रहे थे, इतने में उनके शरीर में से दिव्य प्रकाश निकल कर चारों तरफ फैलने लगा । मिथ्याभिमानी ब्राह्मण भयभीत हो गये कि यह प्रकाश हमें निगल लेगा । परन्तु वह शीतल प्रकाश उनके हृदय में छा गया और उन्हें लगा कि ये बोलनेवाले स्वामी ही मूर्तिमान ब्रह्म हैं । तब इनके गुरु स्वामिनारायण के परब्रह्म होने में तो शंका ही कैसे की जा सकती है ? सब ब्राह्मण स्वामी के चरणों में गिर गये और उन्होंने स्वामिनारायण का आश्रय लिया ।

## परा भक्ति

महाराज की आज्ञा से स्वामी इस तरह गाँव गाँव भ्रमण करते थे । जहाँ जाते वहाँ स्वामिनारायण की महिमा का प्रसार करते थे । उनकी अपार साधुता ही सबको प्रभावित करती थी ।

उनकी वाणी से सबके सन्देह मिट जाते थे । विरोध शांत हो जाता था । महाराज में अखंड वृत्ति रहने पर भी स्वामी में उनके प्रत्यक्ष दर्शन की उत्कंठा उतनी ही वनी रहती थी, प्रीति छलक उठती थी ।

एक वार गुणातीतानन्द स्वामी को महाराज के साथ गढडा से वरताल आने का मौका मिल गया । परन्तु महाराज तो घोडी पर बिराजते थे, इसलिए दर्शन का लाभ स्वामी को नहीं मिलता था । घोड़ी के साथ दौड़ने पर ही यह लाभ मिल सकता था । लेकिन ऐसा करने में किसी साधु का साथ जरूरी था । इन सब उलझनों को उलझाने के लिए स्वामी ने प्रसाद में मिला लड्डू एक साधु को देकर उसे अपने साथ दौड़ने के लिए तैयार किया । स्वयं महाराज के दर्शन करते हुए पीछे पैर झाड़ी या झाड़, खड्डु या टेकरे की परवाह किये विना कुछ कोस दौड़े । प्रभु के प्रत्यक्ष दर्शन की यह महिमा स्वामी में मानो पराभक्ति का मूर्तिमन्त दर्शन कराती थी ।

## दासत्व भक्ति

जब देह का भान भुला जाता है और आत्मा का सम्यक् ज्ञान हो जाता है तभी एसी विरल घटना देखने को मिलती है । भक्ति की उन्माद-अवस्था में भी स्वामी का देह-कुंभ निम्न प्रकार की सेवा करने की भावना से छलक उठता था । वरताल में कुछ सन्त वीमार थे । जहाँ सेवा का जरा-सा भी अवकाश होता वहाँ स्वामी की सेवा का प्रकाश फैला ही समझिये । वीमारों की सेवा को स्वामी विशेष रूप से पसंद करते थे ।

इन वीमार सन्तों की १८ गीली गुदड़ियाँ दोनों कंधों पर उठा कर स्वामी मंदिर के दरवाजे में प्रवेश कर रहे थे । महाराज

भी उस समय गाँव में एक हरिभक्त के घर भोजन करके भक्तों के साथ लौट रहे थे। दरवाजे में ही उनकी भेंट स्वामी से हो गई। स्वामी की वृत्ति महाराज में स्थिर हो गई। महाराज भी खड़े हो गये। सब कुछ चित्रवत्! कुछ समय बाद महाराज सभा में पधारे। लेकिन वे एकदम अकुलाने लगे। बोले: "मेरे कंधे से यह भार उतारो!" कोई समझ नहीं पाये कि महाराज क्या कह रहे हैं। इससे महाराज फिर बोले: "उस साधुने मेरे सिर पर जो भार रखा है उसे उतारो।" एक सेवक दौड़ा और दूर जा रहे स्वामी के कंधें से गुदड़ियाँ उठा कर सभा-मंड़प में महाराज के पास लाकर रख दीं। तब महाराज की अकुलाहट दूर हुई। उन्होंने स्वामी के साथ अपनी एकता की बात सबको समझाई। जो सन्त बीमार थे वे अपनी गुदड़ियाँ उठाकर ले गये। लेकिन जो चंगे थे वे धोने के लिए लाई गई गुदड़ियाँ लेने नहीं आ सके।

उसी समय महाराज ने मुक्तानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी आदि को बुलाया और पूछा: "इन गुणातीतानंद स्वामी को पहचानते हो?"

"ये तो अत्यन्त सेवाभावी और तपस्वी संत हैं," सबने कहा।

"ऐसा नहीं। ये तो जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति-तीनों अवस्थाओं में हमारा अखंड स्मरण करते हैं। हमारी महिमा का जितना इन्हें ज्ञान है उतना अन्य किसीको नहीं है। इतने बड़े हैं, फिर भी बीमारों के साथ स्वस्थ संत भी इनसे सेवा कराते हैं, इसे क्या कहा जाय?"

स्वयं महाराज के मुख से स्वामी की ऐसी महिमा सुन कर मुखिया संत अपनी विद्वत्ता और प्रतिष्ठा को धिक्कारने लगे।

एकता

महाराज के साथ स्वामी की एकता को बताने वाली ऐसी अनेक घटनायें घटी थीं। एक बार स्वामी कृपानंद स्वामी के साथ समढियाळा गाँव पधारे थे। वहाँ के हरिभक्त वीरा शेलड़िया का पुत्र लक्ष्मण स्वामी से रोज एक प्रश्न पूछता था। उसी के एक प्रश्न का जवाब देते समय स्वामी महाराज की महिमा का वर्णन करते करते ऐसे भाव में आ गये कि लक्ष्मण ने उनके शरीर से प्रकाश निकलता देखा। वह चकित हो गया, क्यों कि उसी प्रकाश में उसने स्वामी के स्थान पर स्वयं महाराज को बैठा हुआ देखा। महाराज के चरण-कमल लक्ष्मण ने अपनी छाती से लगाये। इसलिए स्वामी बोल उठे :

"अरे लक्ष्मण, यह क्या करता है?"

"क्यों, महाराज के चरण-कमल अपनी छाती से लगाता हूँ। ये तो महाराज हैं! ......"

समीप बैठे हुए सब भक्तों को आश्चर्य हुआ कि लक्ष्मण स्वामी को महाराज क्यों कहता है? बाद में जब लक्ष्मण ने स्वामी के स्वरूप में स्वयं को महाराज के दर्शन होने की बात कही तब सब लोगों को लगा कि अहाहा, स्वामी के साथ महाराज की कैसी एकता है!

एक बार गढड़ा में महाराज ने संतों से नियम-धर्म के दृढ़ पालन की बात कही। इस में कोई फर्क न पड़े, इसके लिए संतों से एक दूसरे के जामिन बनने के लिए उन्हों ने कहा। सब एकदूसरे के जामिन बने। इतने में गुणातीतानंद स्वामी वहाँ आ पहुँचे। उन्हें देख कर ब्रह्मानंद स्वामी बोले : "इन गुणातीतानंद स्वामी के जामिन कौन होंगे?" मानो किसी की प्रतीक्षा करते बैठे हों, इस तरह महाराज तुरन्त बोले :

"इन के तो हम सदा के जामिन हैं!" स्वामी पर महाराज की ऐसी अकल्पनीय प्रसन्नता देख कर सभा स्तब्ध हो गई।

## जूनागढ़ मंदिर के महंत-पद पर

इस के बाद जूनागढ़ में मंदिर का आरंभ हुआ। सरकार-दरबार की झंझटों और जूनागढ़ के भारी पानी का विचार करके कोई वहाँ रहने के लिए तैयार नहीं था। ऐसे समय महाराज की नजर गुणातीतानंद पर ही पड़ती थी। मदारी जैसे बंदर को नचाता है वैसे महाराज के वचन पर तन-मन को नचाने वाले स्वामी ऐसी आज्ञायें पालने के लिए सदा तत्पर ही रहते थे।

मंदिर बन जाने के बाद जूनागढ़ मंदिर की महंती भी महाराज ने स्वामी को ही सौंपी। स्वामी ने महंत-पद के लिए अनिच्छा दिखाई। वे अधिकार से सदा दूर रहना चाहते थे। परन्तु महाराज की इच्छा के सामने उन्हें झुकना पड़ा। महाराज ने स्वामी के सिर पर पगड़ी रख कर अपनी प्रसन्नता सभा में प्रकट की।

## अक्षर धाम की भेंट

इसी सभा में महाराज ने कुरजी दवे नाम के एक भक्त को समीप बुला कर स्मरण कराया कि तुम लोज गाँव में रामानंद स्वामी के आगमन की बधाई लेकर आये थे तब मैंने तुमसे कहा था कि अभी तो मेरे पास कुछ नहीं है, परन्तु भविष्य में मैं तुम्हें अपने अक्षर धाम की भेंट दूँगा। याद है न?

महाराज पहले-पहल लोज पधारे थे उस समय की पुरानी बात याद कराने के लिए कुरजी दवे बहुत खुश हुए। उन्होंने सोचा कि महाराज कुछ देंगे। तब महाराज धीरे से बोले :

"ये गुणातीतानंद स्वामी ही हमारा अक्षर धाम हैं। इनको हम तुम्हें भेंट करते हैं। सौराष्ट्र देश के सत्संगियों को इनके द्वारा हम सुख देंगे।"

मंदिर की प्रतिष्ठा हुई। महाराज ने गोपालानंद स्वामी तथा सब संतों और भक्तों को आदेश दिया कि आप सब प्रतिवर्ष एक महीने जूनागढ़ में एकत्र होकर गुणातीतानंद स्वामी का समागम करें। महाराज ने उन्हें असमझाया कि अनंत जन्मों की कमी स्वामी के समागम में इसी जन्म में पूरी होगी।

इस उत्सव में जूनागढ़ के नवाब भी हाजिर रहे थे। उन्होंने महाराज से कहा: "आपने यहाँ अखण्ड निवास करने का वचन दिया था। तो आपको यहाँ रहना होगा।"

"हम तो यहाँ सदा नहीं रह सकेंगे। लेकिन ये गुणातीतानंद स्वामी हमारे ही जैसे हैं। इन्हें हम यहाँ रखेंगे।" नवाब को महाराज के वचन में विश्वास था। इसलिये उन्हें संतोष हुआ। और स्वामी की महत्ता का भी खयाल आया।

इस प्रकार महाराज ने मौके मौके से गुणातीतानंद स्वामी का परिचय सबको करा कर तथा सत्संग–समाज का नेतृत्व उन्हें सौंप कर स्वधाम जाने का संकल्प किया। गुणातीतानंद स्वामी को उन्हों ने जूगागढ़ से गढड़ा बुलाया। स्वामी को देख कर महाराज एकदम बोल उठे;

"मीठा व्हाला कैम विसरुं, मारुं तमथी बांधेल तम हो,
तरस्याने जेम पाणीडुं व्हालुं, भूख्याने भोजन हो...'

–'हे मधुर और प्रिय, तुमको मैं कैसे भूलूँ? मेरा शरीर तुमसे बँधा हुआ है। प्यासे को जैसे जल प्रिय है और भूखे को भोजन...वैसे ही तुम मुझको प्रिय है...'

महाराज की और स्वामी की दृष्टि मिली। उन्होंने अपने संकल्प का संकेत स्वामी को दिया और स्वतंत्र रूप से देहत्याग किया। सब संत शोक में डूब गये। गुणातीतानन्द स्वामी तथा गोपालानन्द स्वामी ने सब को आश्वासन दिया।

### अखण्ड निवास

महाराज की उत्तर-क्रिया पूरी होने के बाद स्वामी वाडी में जा रहे थे। वहाँ पानी की नाली के सामने हरीभरी लहलहाती दूब को देख कर स्वामी को याद आ गया कि दूब का जीवन जैसे जल है वैसे हमारा जीवन महाराज हैं। परंतु महाराज तो गये! स्वामी मूर्च्छित हो गये। महाराज ने दिव्य रूप में स्वामी को दर्शन दिये और कहा: 'मैं कहाँ गया हूँ? मेरा तो तुम में अखण्ड निवास है!" हर्ष से पुलकित होते हुए स्वामी जाग्रत हुए।

अपने सम्बन्ध से अनेकानेक जीवों को ब्रह्मरूप बना कर सर्वोत्तम मुक्ति का ध्येय सिद्ध करने की, अक्षरधाम की प्राप्ति कराने की श्रीजी की विरासत इस ब्रह्मांड में स्वामी गुणातीतानन्द के द्वारा चलती रही।

महाराज का प्रत्यक्ष आदेश मिलने पर सौराष्ट्र में जूनागढ़ के आसपास तथा गुजरात में स्वामी हमेशा घूमते रहते थे और श्रीजी महाराज द्वारा उपदिष्ट सर्वश्रेष्ठ धर्म – भागवत धर्म का प्रचार करते थे। सब को महाराज का स्वरूप और सामर्थ्य समझाते थे। अंग-प्रत्यंग से टपकती निर्दोष साधुता, दिव्य वाणी के निरंतर प्रवाह तथा अद्‌भुत आकर्षण-शक्ति की वजह से सब भक्त स्वामी पर अपना सब कुछ निछावर करने के लिए तैयार रहते थे।

### सत्संग का प्रभाव

अकाल के एक कठिन अवसर पर हामापर गाँव के

करसन वाँभणिया नामक भक्त को अपने कुटुम्बी जनों की नहीं परंतु स्वामी और सन्तों की चिन्ता पहेले हुई। घर में जो कुछ गहने-गाँठे और सम्पति थी वह डिब्बा भर कर भक्त ने जूनागढ़ आकर स्वामी के चरणों में रख दी और कहा : "स्वामी, इस मुसीबत के समय में आप इसका उपयोग करें।"

स्वामी ने भक्त को समझाया : "मंदिर में तो ठाकुरजी के प्रताप से कोई कठिनाई नहीं है, इसलिए तुम्हीं इसका उपयोग करो।" लेकिन भक्त गद्‌गद्‌ हो गये। "स्वामी यह सेवा स्वीकार नहीं करें तो..." – इस विचार से भक्त की आँखें छलछला आईं। अंत में गुणातीतानन्द स्वामी ने उनकी सहायता स्वीकार की, परंतु उसे उसे अनामत के रूप में रख छोड़ा। दूसरा वर्ष अच्छा आने पर भक्त को बुला कर स्वामी उन्हें डिब्बा लौटाने लगे। लेकिन उन्होंने किसी भी तरह यह बात स्वीकार नहीं की। वे बोले : "एक बार आप के चरणों में जो चीज रख दी, वह वापिस ली ही नहीं जा सकती।" अपनी अपेक्षा भी स्वामी में अधिक आत्मबुद्धि और प्रीति रखनेवाले ऐसे अनेक भक्त स्वामी की थोड़ी-सी भी कृपा के अधिकारी बनने के लिए समर्पण का सौदा करके स्वामी के चरणों में लोटते थे।

ऐसा था स्वामी के सत्संग का रंग। सद्‌गुरु गोपालानंद तथा दूसरे सद्‌गुरु और गृहस्थ स्वामी के समागम का आनन्द लेने के लिए दूर दूर से आते थे। स्वामी संयम और नियम की, पंच-विषयों के खंडन और भक्ति के मण्डन की बहुत प्रभावशाली बातें करते थे। जो कोई सुनते थे उनका हृदय उन में रंग जाता था।

## अक्षर का अवतार

स्वामी के इस प्रभाव की प्रतीति सब को अपने आप ही

समग्र सत्संग में होने लगी। एक समय तो जूनागढ़ के मंदिर में सत्संग–सभा में गोपालानन्द स्वामी ने सबको समझाते हुए कहा : "शास्त्रों में जिस अक्षर या ब्रह्म तत्त्व की बात कही गई है, वह स्वामी के रूप में मूर्तिमान है। मुझे महाराज ने स्वयं यह बात कही है और इस भादरा गाँव के हरिभक्त इस बात के साक्षी हैं।"

चैत्री पूनम के एक समारोह में आचार्य महाराज तथा महान संत एकत्र हुए थे। स्वामी जूनागढ से पधारे थे। सबने उनका स्वागत किया। स्वामी का कंठ हारों से भर गया। यह दृश्य देख कर अचरज में डूबते हुए भोंयका गाँव के मालजी सोनी ने अपने गुरु गोपालानन्द स्वामी से पूछा : "ये संत कौन हैं, जिनका आप इतना सम्मान कर रहे हैं!"

गोपालानन्द स्वामी ने मालजी सोनी को स्वामी का परिचय कराया : "ये तो गुणातीतानन्द स्वामी हैं, जिनके बारे में मैंने तुम से कहा था कि वे महाराज के निवास के धाम हैं और अक्षर ब्रह्म के अवतार हैं।"*

समय समय पर भक्तों को स्वामी की अलौकिकता का अनुभव सहज ही होता रहता था। महाराज के एक सेवक नाजा जोगीया ने महाराज के स्वधाम–गमन के बाद त्याग–आश्रम स्वीकार किया। स्वामी की बातों से आकर्षित होकर वे जूनागढ आये। सदा के नियम के अनुसार एक बार वे ध्यान में बैठे। कुछ देर बाद पास बैठे हुए गुणातीतानंद स्वामी बोले : "स्वामी, ध्यान में कैसी गड़बड़ी कर रहे हैं?"

---

* भोंयका गाँवके इन मालजी सोनी से शास्त्री यज्ञपुरुषदासजी महाराज अनेक बार मिले हैं। उन्होंने मालजी सोनी को अपने मुख से वह परिचय सुनाया था, जो गोपालानन्द स्वामीने सन्तो और हरिभक्तों को गुणातीतानन्द स्वामी के विषयमें दीया था।

घनश्यामदास को यह आक्षेप अच्छा नहीं लगा। इसलिए स्वामी ने स्पष्टता करते हुए कहा : "आप महाराज की मूर्ति का स्मरण कर रहे थे या गढडा के मंदिर में रहनेवाली सफेद माथे वाली भैंस के सिर पर हाथ फेर रहे थे ?" घनश्यामदास अपने मन की स्थिति को समझ लेनेवाले स्वामी की ओर आश्चर्यचकित हो कर देखते रहें। अपनी भूल का मन में विश्वास हो जाने पर घनश्यामदास स्वामी के चरणों में झुक गये। वे वोले : "स्वामी आप सच्चे ब्रह्म हैं। मेरे मन की बात आप जान गये।" उनकी नम्रता से प्रसन्न होकर स्वामी ने अध्यात्म-मार्ग की प्रेरणा देनेवाली करुणा-दृष्टि उन पर डाली।

## कडवे जीवों को मीठा बनाया

मेंगणी दरबार मानसिंहजी की कचहरीका सदस्य लीलाखा गाँव का मूँजो सूरू अतिशय व्यसनी तथा भयंकर रूप से हिंसक वन गया था। एक बार स्वामी उसके गाँव में पधारे। सब के साथ वह भी स्वामी के दर्शन के लिए आया। परन्तु योगी की निर्दोष आँखों के सामने वह देख नहीं पाया। उसके दोषों को जाननेवाले स्वामी ने उसे समझाया कि अफ़ीम, शराव, मांस और हिंसा के कारण नरक का कष्ट भोगना पडता है। विषयों के मद में अंधे बनें हुए मूँजा सूरू ने ऊँची आवाज में कहा : "ये सब वातें क्षत्रियों के लिए नहीं हैं। हम तो शास्त्रों की निकम्मी पोथियों को अधर में लटकाये रखते हैं।"

करुणामूर्ति स्वामी ने इस वहके हुए जीव के सामने दृष्टि की। तुरन्त मूँजा सूरू का शरीर जमीन पर लुढक गया। उसका शरीर निश्चेतन हो गया। उसे समाधि लगा गई।

नरक के दुःखों का उसने प्रत्यक्ष अनुभव किया। उसका शरीर थर-थर काँपने लगा। स्वामी ने अपनी दृष्टि खींच ली। होश में आते ही वह स्वामी के चरणों गिर गया। उसने स्वामी से माफी माँगी और कहा: "स्वामी, मुझे ऐसी यमपुरी नहीं चाहिए। मुझे बचाईये।" स्वामी ने उसे समझाया कि महाराज की शरण लेने से ऐसा दुःख टलता है। इसके फलस्वरूप संप्रदाय की कंठी धारण कर के पाप का पर्वत मूँजो सुरू सत्संगी हो गया। सारे प्रदेश में उसका काला कहर शांत हो गया। हजारों लोग स्वामी का उपकार मानने लगे।

एक समय स्वामी घूमते घूमते जूनागढ के पास मालिया गाँव में गये। सामने उन्हें रामा हाटी नामक व्यक्ति मिला। स्वामी ने उससे पूछा: "रामा, सिंह को मोतीचूर के लड्डू और जलेबी खाने के लिए दें तो वह खायेगा?"

"नहीं, महाराज, वह तो अपना ही खाना खायेगा।"

"तो हम मनुष्य होकर जानवरों का खाना खायें यह कैसा कहा जायेगा? साथ ही न पीने जैसी वस्तु पिये?"

स्वामी ने रामा हाटी के शब्दों का उत्तर ऐसा दिया कि वह बिलकुल चुप हो गया। स्वामी की अमृत भरी दृष्टि के प्रताप से उसने सारी ही बुरीं आदतें उसी क्षण छोड दीं और उनका सत्संग स्वीकार किया।

कुछ वर्ष के बाद गोपालानन्द स्वामी ने अक्षर धाम में जाने का संकल्प किया। यह जान कर बडे बडे सन्त और हरिभक्त गद्गद् हो गये। उन्होंने पूछा: "स्वामी, हमारा आधार कोन होगा?" गोपालानन्द स्वामी ने उन्हें आश्वासन देते हुए कहा: "जुनागढ के योगी गुणातीतानन्द स्वामी समर्थ साधु हैं और महाराज के रहने का धाम हैं। वे ही

आप सब के आधार होंगे।" इसके बाद सत्संग का समस्त मुमुक्षु–वर्ग गुणातीतानन्द स्वामी के आलंबन और आश्रय में ही निभने लगा।

## स्वामी उपशम में

एक दिन बड़े सवेरे स्वामी जूनागढ मंदिर के सभा–मंडप में ठाकुरजी के सामने महापूजा कर रहे थे। पूजा करते करते वे समाधिस्थ हो गये। न हिलें न डुलें। सब लोग सोचने लगे कि स्वामी उपशम दशा में से कब वापस आयेंगे। सब कोई स्वामी के आसपास आतुरता से बैठ गये। तीन दिन बीत गये। अंत में चौथे दिन स्वामी समाधि में से जाग्रत हुए। उन्होंने सब को अपने आसपास अधीर बना हुआ देखा। अतः मानो धीरज बँधा रहे हों इस तरह वे बोले :

"कपड़े के कुछ व्यापारी गठरियाँ लेकर एक गाँव में माल बेचने गये। लेकिन उस गाँव में सभी लँगोटी लगाने-वाले थे। इसलिए व्यापारी माल बेचे बिना लौट आये। एक व्यापारी बुद्धिमान था। उसने ग्रामवासियों को अपना माल मुफ़्त बाँट दिया। सब कपड़ पहनना सीखे। इससे व्यापारी का कपड़ा खूब बिका। इसी प्रकार स्वामिनारायण भगवान इस पृथ्वी पर पधारें। उनका ज्ञान परोसने में कुछ संतों ने कसर रखी और ज्ञान की गठरियाँ लेकर वे लौट आये। परन्तु हमने तो पात्र–कुपात्र देखे बिना महाराज की महिमा गाना शुरू किया है। इस समय आप सब जैसे हमारी ओर आकर्षित हुए वैसे ही सदा रहें, तो आप की सारी वासनायें नष्ट हो जायें।" परोक्ष रूप में स्वामी ने अपने सम्बन्ध की महिमा समझाई कि गुणातीत संत के सम्बन्ध से ही जीव की अज्ञान–अवस्था तुरन्त मिट जाती है।

## बाजार के कांटे

स्वामी की ज्ञान देने की पद्धति भी बड़ी व्यावहारिक थी। एक बार स्वामी मंदिर की बाड़ी मे बैठे थे। उस समय कुछ बड़े बड़े हरिभक्त आये और स्वामी को साष्टांग दंडवत करने लगे। यह देख कर कोई बोला कि रहने दें, काँटे लग जायेंगे। स्वामी बोले: "ये काँटे तो सुई या नहरनी से निकल जायेंगे, लेकिन बाजार के काँटे बहुत खराब होते हैं।"

"बाजार के काँटे क्या होते हैं?" सबने पूछा।

"बाजार में रूप का काँटा आँखों में, गान–तान का काँटा कानों में, पापी के स्पर्श का काँटा चमड़ी में, पापी की गंध का काँटा नाक में, स्वाद का काँटा जीभ में – इस तरह अनेक काँटे शरीर में पैठ जाते हैं। इन काँटों को निकालना कठिन होता है। इस लिए नियम में रहने और संत का संग करने से कोई विघ्न जीवन में नहीं आता।"

## गरीब से अमीर

स्वामी के योग से लोगों के भौतिक दुःख भी दूर होते थे। एक बार स्वामी गिरनार की तलेटी में स्थित नारायण सर पर बड़े सवेरे स्नान करने गये। पोष का महीना था। स्वामी को ठंडी अधिक लग गई। इतने में मुसलमान लकड़हारे का एक लकड़ा जंगल से लकड़ी काट कर घर जा रहा था। भक्तों की विनती से उसने अपनी लकड़ियाँ स्वामी को तापने के लिए उन्हें दे दीं। स्वामी ने प्रसन्न होकर लड़के को दुआ दी: "अब तुझे लकडियाँ नहीं बेचनी पड़ेगी।" इसी लकड़हारे की सुन्दर बहन के साथ जूनागढ़ के नवाब ने शादी की। लडका लकडहारे में से नवाब का दीवान बना। आज भी जूना-

गढ में बाउद्दीन की गवाही देनेवाली इमारतें वहाँ खड़ी हैं। स्वामी का उपकार वह कभी भूला नहीं।

## निरहंकारी संत

समर्थ होते हुए भी स्वामी का रहन–सहन दासत्व–भाव से ओत प्रोत था। एक बार तरणेतर के महंत जूनागढ़ के स्वामिनारायण मंदिर में आये। मंदिर की विशालता तथा समृद्धि देख कर महंतजी को लगा कि इस मंदिर के महंत बड़े ठाट बाट वाले होंगे। स्वामी उस समय मंदिर में झाड़ू लगा रहे थे। उनके पास जा कर उन्होंने पूछा कि यहाँ के महंत कहाँ हैं? स्वामी के कहने से वे सभा–मंडप में महंत की खोज करने लगे। कुछ देर बाद स्वामी ही स्वयं सभा–मंडप में आये। कचरा साफ करने वाले साधु ही मंदिर के महंत हैं, यह जान कर सबको आश्चर्य हुआ। जब उन्होंने जाना कि स्त्री और धन का आठ प्रकार से त्याग करनेवाले मंदिर के महंत की जायदाद में पहनने–ओढ़ने के गिनकर ११ वस्त्र, खाने का लकड़ी का पात्र तथा पानी पीने की तुंबी है—धातु का एक टुकड़ा भी नहीं है, तब उन्हें स्वामिनारायण प्रभु तथा उनके संतों की महत्ता का सच्चा खयाल आया।

## सब के आकर्षण का केन्द्र

श्रीजी महाराज द्वारा नियुक्त किये हुए वरताल तथा अहमदाबाद दोनों विभागों के आचार्यो का स्वामी के प्रति अनन्य भाव था। वरताल के रघुवीरजी महाराज तो स्वामी का सत्संग करने के लिए जूनागढ़ जाते थे। वरताल में भी उत्सव के अवसर पर स्वामी की प्रभावशाली बातों का वे खूब लाभ उठाते थे।

अंत अंत में स्वामी वरताल जा रहे थे। रास्ते में पता

चला कि अहमदावाद में आचार्य श्री अयोध्याप्रसादजी महाराज वीमार हैं। वे शांति के लिए स्वामी का दर्शन पाने के लिए आतुर हैं। स्वामी अहमदावाद पधारे। आचार्य महाराज ने उनका खूब सम्मान कराया। स्वामी के दर्शन से उनका दुःख मिट गया। अंतर में शांति मिली। हरिजयंतीका समारोह स्वामी ने अहमदावाद में किया और श्रीजी महाराज पूर्ण पुरुषोत्तम नारायण हैं इस प्रकार उनकी सर्वोपरि महिमा की अद्‌भूत वातें कहीं।

आचार्य महाराज ने स्वामी को अपनी हवेली में भोजन के लिए निमंत्रित किया। चाँदी का थाल सजाया गया और उनसे निवेदन किया गया कि आज तो आप इसमें भोजन करें। स्वामी ने कहा: "महाराज की आज्ञा नहीं है।" आचार्य महाराज ने पुनः निवेदन किया कि 'आपकी दृष्टि में तो कचरा और कंचन समान है।'

स्वामी वोले: "लकड़ी के पात्र रूपी कचरे में तो खाना खाया जा सकता है, परन्तु चाँदी के थालरूपी कचरे में नहीं खाया जा सकता।" स्वामी ने धर्म के पालन में प्रेम को वाधक नहीं वनने दिया। इसके वाद चाँदी के थाल में लकड़ी का पत्तर रख कर स्वामी ने दाल के साथ रोटी खाई। आचार्य महाराज को वड़ी खुशी हुई। स्वामी वरताल जाकर जुनागढ़ लौटे। इस प्रकार जोटें से छोटे संत से लेकर आचार्य महाराज तक समस्त सम्प्रदाय स्वामी के प्रति प्रेम और भक्ति भाव रखता था। स्वामी सव को शांति प्रदान करते थे, परन्तु अपने धर्म–नियम में रत्ती भर भी छूट छाट नहीं लेते थे।

### प्रागजी भक्त

आषाढ़ के वादल जैसे वरसते हैं, वैसे ही स्वामी के मुख–कमल से भगवद्–वार्ताओं का प्रवाह वहा करता था। इस ज्ञान–गंगा

में जो लोग स्नान करते थे, वे निश्चित ही भगवद्-भाव को प्राप्त करते थे। स्वामी स्वयं ही एक बार बोल गये कि "इस समय सत्संग में ऐसी बातें होती हैं कि जीव ब्रह्मरूप हो जाय। यदि प्रेम भाव से सत्पुरुष में मन लगाया हो, उनमें विश्वास हो और निष्कपट भाव से आचरण करे, तो जीव ब्रह्मरूप बने बिना रह ही नहीं सकता।"

यह रंग स्वामी ने अनेक आश्रितों को लगाया। इन में महुवा के प्रागजी भक्त मुख्य थे। पहले गोपालानंद स्वामी के शिष्य होते हुए भी उन्हीं की आज्ञा से वे स्वामी के पास आये थे। धीरे-धीरे स्वामी के साथ उनका स्नेह और प्रेम बढ़ा। उनकी पात्रता देख कर स्वामी ने उन्हें ब्रह्मज्ञान देने की इच्छा बताई। सामने से प्रागजी भक्त ने इस के लिए गुरुचरण में मन लगा कर मरजिया बनने की तैयारी दिखाई।

अनुवृत्ति ही भक्ति हैं, ऐसा एक मात्र सूत्र जानने वाले प्रागजी भक्त ने शरीर और मन के भावों की अपेक्षा करके और अनेक कष्ट भोग कर स्वामी के अभिप्राय के अनुसार साढ़े तीन वर्ष तक उनकी अपार सेवा की। इसके साथ असाध्य तपस्या तो उनकी चलती ही थी। स्वामी प्रसन्न हुए। उन्हें महाराज का प्रत्यक्ष दर्शन स्वामी ने कराया। प्रागजी भक्त का रात-दिन भजन चलता रहता था। पारस बन गये। उनके दर्शन और उनकी बातों से लोगों को शांति मिलने लगी।

स्वामी के दूसरे भी कुछ समर्थ भक्त थे—श्री जागा भक्त, बालमुकुंददास स्वामी, योगेश्वरदास स्वामी, अचिन्त्यानंद ब्रह्मचारी, शिवलाल सेठ आदि।

इस प्रकार एकान्तिक धर्म-प्रचार का महाराज का जो कार्य था उसे वेग प्रदान करके, अनेक संतों और हरिभक्तों को जीवन

में एकान्तिक धर्म सिद्ध करा कर और गुणातीत स्वरूप प्रागजी भक्त जैसे उत्तराधिकारी भक्त को अपना कार्य सौंप कर स्वामी ने धाम में जाने का संकल्प किया।

जूनागढ़ मंदिर से निकलते समय स्वामी बोले : "महाराज की आज्ञा से इस मंदिर में हम ४० वर्ष, ४ मास और ४ दिन रहे। अब हम सत्संग में घूमेंगे और महुवा जा कर रहेंगे। (अर्थात् महुवा के प्रागजी भक्त द्वारा कार्य करेंगे) जूनागढ़ से निकल कर स्वामी वंथली गाँव आये। यहाँ एक भक्त ने स्वामी से पूछा; "स्वामी, अक्षर कैसा होगा?"

"यह तेरे घर में बैठा है वही अक्षर है," — स्वामी ने निःसंकोच कहा। घूमते घूमते स्वामी गांड़ल आये। वहाँ संवत् १९२३ में आश्विन शुक्ला दशमी के दिन काफी रात बीतने पर स्वामी स्वतंत्र रूप में अपने धाम सिधाये। जिस स्थान पर उनकी अंतिम विधि की गई उस स्थान में 'अक्षर-देरी' पर स्वामी यज्ञपुरुषदास-शास्त्रीजी महाराज ने सुन्दर मंदिर बँधवाया है। और, गुणातीतानंद स्वामी, अर्थात् अक्षर तथा महाराज अर्थात् पुरुषोत्तम की पंच धातु की मूर्तियाँ मध्य-मंदिर में स्थापित की हैं।

## एकमेव अद्वितीयं ब्रह्म

भगवान स्वामिनारायण ने भागवत धर्म के प्रसार तथा पूर्ति के लिए स्त्री और धन के त्यागी पाँच सौ संत तैयार किये। उनमें गोपालानंद स्वामी, गुणातीतानंद स्वामी, नित्यानंद स्वामी, निष्कुलानंद स्वामी, ब्रह्मानंद स्वामी आदि मुख्य संत थे। इन सब में भी ब्राह्मी स्थिति के प्रेरक बल के समान विशेष प्रतिभा से युक्त थे गुणातीतानंद स्वामी। श्रीजी महाराज ने अनेक अवसरों पर इन शब्दों में उनकी स्थिति का परिचय सबको कराया था : "ये गुणातीतानंद स्वामी अक्षर अर्थात् ब्रह्मका अवतार

हैं। एक स्वरूप में वे हमारे निवास का दिव्य धाम हैं। तथा दूसरे स्वरूप में हमारे अखण्ड सेवक हैं।' सम्प्रदाय का इतिहास इस कथन की साक्षी देता है।

इस के सिवाय, कार्यशक्ति भी व्यक्ति का विशिष्ट दर्शन कराती है। अपने इष्ट देव — स्वामिनारायण भगवान की सर्वोच्च महिमा का प्रसार करने में गुणातीतानंद स्वामी का योगदान सबसे उत्तम था। अपने उपास्य देव के प्रति उनकी असाधारण सेवा तथा निर्दोष भक्ति ही अन्य संतों की अपेक्षा उनकी विशेषता दिखाने के लिए काफी है। साथ ही साथ, त्याग और वैराग्य, सेवा भावना तथा दासत्व भाव को भी उनके जीवन से एक क्षण के लिए भी अलग नहीं किया जा सकता। इसके फलस्वरूप उनके समागम में रहने वाले अनेक त्यागियों और गृहस्थियों ने अपने जीवन में ऐसे सद्‌गुणों को आत्मसात् करके सदेह स्थिति में भी ब्रह्मदशा का अनुभव किया है।

और, सव से विश्वसनीय उदाहरण हो तो स्वामी के वाद उनके द्वारा चालू रही हुई उज्जल शिष्यपरम्परा का। शिष्य सवाया बने–इसी में गुरु की महत्ता है। गुणातीतानंद स्वामी के वाद उनकी ही कृपा के फल स्वरूप, उनके भाव को प्राप्त किये हुए, ब्रह्मस्वरूप प्रागजी भक्त, और उसके बाद क्रमशः प्रकट हूए ब्रह्मस्वरूप शास्त्रीजी महाराज, ब्रह्मस्वरूप योगीजी महाराज तथा वर्तमान में विद्यमान ब्रह्मस्वरूप प्रमुख स्वामीजी महाराज—यह गुणातीत विरासत ही ५०० परमहंसों में स्वामी की विशेषता का सबूत हमेशा देती रहेगी।

## स्वामी की बातें

अक्षर मूर्ति गुणातीतानंद स्वामी द्वारा कही गई बातें अंतर के अंधकार का नाश करके स्व–स्वरूप का प्रकाश प्रगटाने वाली हैं। स्वामी के ही शब्दों में कहे तो "ये बातें जादु हैं। जादु कैसा है? जादु ऐसा जो जगत को मिथ्या बना दे...ये बातें

अंग्रेजों के फैालाद जैसी हैं जो छूते ही मनुष्य का जगत से सम्बन्ध तोड़ दे...पुर्तगालियों की तोप जैसी है जो लोकालोक पर्वत जैसी दृढ़ वासनाओं को चूर–चूर कर दे।' ब्रह्मज्ञान के उत्तम सूत्रों जैसी उनकी बातों पर हम विचार करें :

* एक व्यक्ति यज्ञ करता है और सारी पृथ्वी में यज्ञका घोडा घुमाता है। इसमें बडा कष्ट रहता है, क्यों कि कोई घोडे को बाँध–ले तब यज्ञ अधूरा रहता है। और दुसरा व्यक्ति मोहल्ले में घोडा घुमा कर यज्ञ कर लेता है। कहने की बात यह है कि इन्द्रियों से प्रभावित अंतःकरण को वश में करना पृथ्वी में घोडा घुमाने जैसा है और स्वयं को ब्रह्मरूप मानना मोहल्ले में घोडा घुमाने जैसा है। और, साधु के जो चौंसठ लक्षण कहे गये हैं उन्हे सीखना पृथ्वी पर घोडा घुमाने जैसा कठिन है और चौंसठ लक्षण वाले साधु में जुड जाना मोहल्ले में घोडा घुमाने जैसा सरल काम है।

* कथा करे, कीर्तन करे, बातें करे, परन्तु जो 'यह देह मैं नहीं हूँ' ऐसा नहीं मानता उसके लिए आठों पहर यह भजन करना जरूरी है कि 'मैं देह नहीं हूँ और देह में रहा जो मैं आत्मा हूँ, ब्रह्म हूँ, । अक्षर हूँ। और मुझमें परमात्मा, परब्रह्म पुरुषोत्तम, प्रकट प्रमाण अखण्ड रूप से बसे हुए हैं। वे कैसे है? वे सब अवतारों के अवतारी हैं और सब कारणों के कारण हैं तथा सबसे परे हैं। वे प्रकट रूप में ये जो मुझे मिले हैं वही हैं। इस बात में सांख्य और योग दोनों ही आ जाते हैं।

* एक गृहस्थ एक मंदिर में पाँच सौ रुपये रख कर चले गये। परन्तु यदि इतने रुपये बैठे खा कर उन्होंने साधु का समागम किया होता तो बडा लाभ होता।

## बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था

भगवान स्वामिनारायण के द्वारा प्रबोधित 'अक्षर–पुरुषोत्तम की उपासना, अर्थात् स्वयं अक्षररूप होकर पुरुषोत्तम की भक्ति करना,' इस सनातन सिद्धान्त के प्रवर्तन के लिये ब्रह्मस्वरूप स्वामी श्री यज्ञपुरुषदासजी ( शास्त्रीजी महाराज ) ने सं. १९६२ में इस संस्थाकी स्थापना की।

उन्हों ने उपासना के प्रसार के लिये शिखरबद्ध मंदिरों का निर्माण करके उनमें भगवान स्वामिनारायण की उन के परम भक्त गुणातीतानंद स्वामी के साथ अर्थात् पुरुषोत्तम की अक्षर के साथ मूर्ति प्रतिष्ठित की।

उन के अनुगामी स्वामीश्री योगीजी महाराज ने, निर्दोष संतप्रतिभा एवं निःस्वार्थ प्रेमभावके द्वारा असंख्य मनुष्योंको, विशेषतः युवावर्ग को धर्माभिमुख किया, समाज में विलुप्त होती सी धर्मश्रद्धा को पुनर्जीवन दिया, देश प्रदेशोंमें अनेक सस्कार केन्द्रों की स्थापना की।

वर्तमानकालमें उन के अनुगामी स्वामीश्री नारायणस्वरूपदासजी ( प्रमुख स्वामीजी) उसी कार्यक्रमों को विशेष वि तृत कर रहे हैं। अकाल एवं संकटग्रत पीडितों को राहत, विद्यार्थीओं को शैक्षणिक सहाय, वैद्यकीय सहाय, आदिवासी एवं पिछडी जातियों में संस्कार सिंचन, दवाखाना, संस्कृत–संगीत पाठशाला, हाईस्कूल, गुरुकुल, साहित्य प्रकाशन, कला उत्तेजन, मंदिर–निर्माण, संस्कार–केन्द्रों का संस्थापन इत्यादि अनेकविध लोकोपकारक प्रवृत्तियों से प्रमुख स्वामीजी समाज को भक्तिरस से नवपल्लवित रख रहे हैं।

अक्षरपुरुषोत्तम विषयक तत्त्वज्ञान को वेदादि शास्त्रों का पूरा आधार है, इस-लिये इस में दिव्यता और आकर्षण है। यह प्रेम का, आध्यात्मिक जाग्रति का तथा साधना का राजमार्ग है।

निर्भय और निःशंक होकर आईये, भगवान स्वामिनारायण हम सब पर आशीर्वाद बरसा रहे हैं।

## भगवान स्वामिनारायण द्विशताब्दी महोत्सव
## विविध प्रकाशन

| | |
|---|---|
| १. वचनामृत | ६०–०० |
| २. भगवान स्वामिनारायण (सचित्र) | ४–०० |
| ३. शिक्षापत्री (सचित्र) | २–०० |
| ४. शिक्षापत्री | १–०० |
| ५. वचनामृत बिन्दु | ००–७५ |
| ६. भगवान स्वामिनारायण | ,, |
| ७. भगवान स्वामिनारायण–संगीत कलाके परिपोषक | ,, |
| ८. संप्रदायका विकास एवं गुरुपरंपरा | ,, |
| ९. भगवान स्वामिनारायण–समाज सुधारक | ,, |
| १०. अक्षरमूर्ति गुणातीतानंद स्वामी | ,, |
| ११. गोपालानंद स्वामी | ,, |
| १२. नित्यानंद स्वामी | ,, |
| १३. ब्रह्मानंद स्वामी | ,, |
| १४. मुक्तानंद स्वामी | ,, |

साहित्यक्षेत्र के सिद्धहस्त लेखकों के द्वारा अन्य पुस्तिकाएं प्रकाशित हो रही हैं।

: प्रकाशक :

बोचासणवासी श्री अक्षरपुरुषोत्तम संस्था
शाहीबाग रोड, अहमदाबाद–३८०००४.

स्वामिनारायण मुद्रण मंदिर - अहमदाबाद ३८०००४